गीतों के शिलालेख

हरिठाकुर

लेखक सहयोगी प्रकाशन
आशीष प्रेस
रायपुर (म. प्र.)

गीतों
के
शिलालेख

गीत संकलन

हरिठाकुर

प्रकाशक
लेखक सहयोगी प्रकाशन
आशीष प्रेस, रायपुर (म. प्र.)

मुद्रक
आशीष प्रेस
रायपुर

सन् १९६९

मूल्य
तीन रुपये

इस संकलन में सन् १९५६ से १९६४ तक लिखे गीत संकलित हैं। कुछ गीतों में कुछ परिवर्तन भी किये गये हैं।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध गीतकार पं. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' जी ने इस संकलन की भूमिका लिखने की कृपा की है। मैं उनका आभारी हूं।

हरिठाकुर

अनुक्रम



छायावाद के प्रथम कवि

पं. मुकुटधर पांडेय

को

समर्पित

ये गीत.......

हरि ठाकुर मध्यप्रदेश के उन कवि-गीतकारों में हैं जो अपनी रचना के ऊषा-काल से ही अभिव्यक्ति और अन्तरस्थ दोनों में नये आयामों के अन्वेषी रहे हैं। यथासम्भव वादों के विवादों से अपने को दूर रखते हुए जीवन के सृजन-संकल्प के प्रति सतत आस्थावान इस स्वर-साधक ने अपने निजी भावानुभवों को वाणी देते हुए सामाजिक प्रेरणाओं और अनुभूतियों के साथ अपने को वैसी ही सच्चाई से सम्पृक्त रखा है। स्वभाव, संस्कार और प्रतीतियों से समाजवादी होते हुए भी कवि ने अपने गीतों में उस गहरी आत्मनिष्ठता को निजी वैयक्तिक आंतरिकता को कला-कारोचित संयम के साथ साधा है जिसकी अपेक्षा एक गीतकार से की जाती है। आज जब अन्य विधाओं के समान गीत भी "फार्मूलाबद्ध" हो गया है और स्वनिर्मित अन्तराल के सीमित दायरे में ही बंधा और टंगा रह जाता है, हरि ठाकुर की ये कड़ियां अपने आशय को तीव्र, वेधक निजता के साथ जीती है :-

फैल सकूं उजियाला बनकर ऐसा मुक्त गगन दो
अंधियारे के पिंजरे में
कब तक प्रकाश का तोता
रटे हुए जीवन की बोझिल
सांस रहेगा ढोता
बगरा दे हर गंध सुमन की ऐसा मुक्त पवन दो

० ० ०

खुल गये घाव के टांके
याद किसी के आये बादल-पंखी नयना बांके
बहुत दिनों के बाद दर्द का खोया छोर मिला
जला निरंतर दीप कहीं तब उसको छोर मिला

करुणा के आरक्त क्षितिज से पीर किरन की झाँके
याद किसी के आये बादल-पंछी नयना बाँके
सुलग रहे हैं गाल दिवस के
धूप पक गयी है
वृक्षों की मर गई छाँह
चेतना थक गई है
सुधियों की धेनुएँ बनाती बादल धूल-धुंआ के

० ० ०

पीकर रहे न होश
मुझे तुम इतना दर्द न दो
बाहर से अटूट
पर भीतर कितना टूट गया
तुमको क्या मालूम
कि क्या--क्या पीछे छूट गया
गीत बने खामोश
मुझे तुम इतना दर्द न दो

तुकों की यांत्रिक आवृत्तियों और भावनाओं के रुंधे--रुंधे बासीपन से मुक्त ये गीत प्रभात के उस प्राणद पवन -स्पर्श से लगते हैं जो खिड़कियों को खोलने और रात भर चलते रहे बिजली के पखे को बंद करने के बाद तनमन को तरोताजा कर जाता है।

छायावादी युग में गीतों की बाढ़ आई तो कथ्य को उच्छ्वासों और मोतियों के आंसुओं से इतना धोया गया कि वह "साफ" हो गया और रंगीनियों की छायात्मक पारदर्शिता मात्र बच रही। शब्द जैसे अपने को दोहराने-चौहराने लगे और उनको कायिक भराव प्रदान करने वाले उनसे संपृक्त मानसिक अनुभव इसी अश्रुधार में बह गये। नये-नये चित्रों की रचना के स्थान पर थोड़े से सर्वस्वीकृत "आफिशियल" चित्रों की प्रतियां ही जैसे कविता में बार-बार धुलकर और "प्रिन्ट" हो होकर आने लगीं। जो भोगा, सहा और जिया जा रहा था वह "मौन" बन गया और

गीतों को कल्पना और भावगत स्वइच्छापूर्ति के विमातखाने का रूप मिलता गया। छायावादोत्तर गीतकाल में आकर गीत की वाचालता बढ़ी और वह अकथनीयता के मुग्धपाश से बाहर भी निकला, पर निराशा और मृत्यु को ही जीवन-दर्शन और आत्म-चिन्तन के रूप में ग्रहण करने लगा। आत्म-परिचय और आत्म-आग्रह की उसे ऐसी चाट पड़ गयी कि प्रचार का माध्यम बनने में उसे कृतार्थता प्रतीत होने लगी। बीच-बीच में बाहरी और भीतरी स्वरतिपूर्ति और आत्मप्रतिवादशीलता भी उसमें बढ़ती गयी। बाद में आत्म-अन्वेषण और आत्मपूजा का ऐसा लहरा आया कि अनास्था और कुंठा अशिल्प और अभाव ही काव्य का पर्याय बन चले। गीत की विधा ही संशयास्पद हो उठी। जैसे ३ महीने की राजा काट कर बाहर आने वाला प्रत्येक अधकचरा खादीधारी नेता होकर प्रवचन देने का शौकीन बन जाता था वैसे ही प्रत्येक कवि यशःप्रार्थी अतुकवन्दियों में जीवन के सत्य उधेड़ने लगा और अपने विद्रूपकत्वपूर्ण काव्यपाठ की सफलता पर रीझने लगा। कविता अकविता बनने में ही जैसे चातुर्य मानने लगी। कुछ-कुछ ऐसी पार्श्वभूमि में हरि ठाकुर के गीत मन को एक नयी अछूती चारुता से भर देते हैं और आस्वादन को एक नया ठहराव भी देते है।

कौन रात ऐसी जो बीत नही जाती है
कौन सांस ऐसी जो जीत नही जाती है
कौन पंथ ऐसा जो अंत हीन होता है
मेरे ओ थके पांव एक चरण और चलो !
स्वप्न रुको, तुम भी तो मेरे हमराही हो
सत्य-जन्म के तुम ही आखरी गवाही हो
ओ मेरे सपने तुम एकबार और ढलो !

० ० ०

झड़ी लगी
बरखा की पहली ही बूंद बड़ी-बड़ी लगी
पेड़ अनमने से

भीगे अंधियारे में और लगे घने से
पानी की धार मुझे गीतों की बंड़ी लगी
हवा चुलबुली सी
नोकीली, ठंडी सी और घुली-घुली सी
मुझको तो गालों पर
गाली सी जड़ी लगी।

० ० ०

यह नदी कि जिसकी जलती अन्तर्धारा
ऐंठी-सी कोई तड़प रही है मछली
इस अंधियारे की हथकड़ियों में कोई
टूटी-टूटी सी देह किरण की मचली
शायद दरकी है कहीं क्षितिज की छाती
आकाश नये रंगों में बदराया है

हरिठाकुर का दावा है :-- कल्पना के कारखाने में न ढलते गीत मेरे
गोद में अनुभूतियों की रोज पलते गीत मेरे
मर्म की ममता बहुत है-बुद्धि की शर्तें नहीं हैं
एक झोना आवरण है, प्याज की पर्तें नहीं हैं।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि वर्णों और लयों के सुविधाप्रद चौखटों से ये गीत मुक्त हैं। पर इनमें स्वच्छन्दतावादी अभिव्यक्ति और मौसमों का खुलापन मिलता है। यह खुलापन एक प्रकार का मैदानी फैलाव दे देता है और इस खुलेपन में लघु से लघु प्रकृति-बिम्ब--बादल का छोटा से छोटा टुकड़ा, झुरमुटों की आड़ में ढका-मुंदा जलाशय भी उभर आता है। बीच-बीच में छायावादी कुहासा है--रह रहकर रहस्यात्मक हो उठने की प्रवृत्ति भी यत्र--तत्र परिलक्षित होती है जो भारतीय मन का चाहे वह कितना भी तरुण हो सहज स्वाभाविक संस्कार है। संतोष इतना है कि कवि ने बंधे हुए मुहावरे के भीतर से बाहर निकलने की बराबर चेष्टा की है। तभी वह कहता है :--

ओ गांव खेत खलिहान नदी सागर पर्वत घाटी
में सूर्य-किरण के साथ तुम्हें आवाज लगाता हूं।

इस आवाज में शिविरबद्धता नही है और कवि का मन निर्यात किये गए आँसुओं से नहीं वरन् अपने ही आँसुओं से धुल कर "दर्पण" बना है। अनुभव की यथार्थता से तात्पर्य उसकी ज्यों की त्यों और तद्वत् उभरी हुई अभिव्यक्ति मात्र नहीं है। एक ही अनुभव के बीसियों क्षण हो सकते है और सब एक-दूसरे से अलग और असम्पृक्त भी। गीत का आघात-स्त्रोत तो वहां है जब सबकी निविड़ता बूंद-बूंद इकट्ठी होती है और जमाव की सी स्थिति ग्रहण करती है। गीतकार वही मरता है जहां उसकी कविता समकालीन गीति-तत्वों से आक्रांत होकर "सिलाजिस्टिक प्रिमिसेज" का रूप लेने लगती है। उसी समय कवि का मन प्रकृति को पूरी गम्भीर तल्लीनता से ग्रहण नहीं कर पाता या फिर आधुनिक बनने के लोभ में उसके साथ अनावश्यक और अरुचिकर प्रीति जोड़ लेता है। नव गीत के अनेक श्रेष्ठ कवि इस दोहरे तनाव के कारण (दोष भी कहें) अपना पूरा वैशिष्ठ्य नहीं उभार पाते है।

हरिठाकुर की कविता का एक तिक्त, सामाजिक व्यंग पक्ष भी है जो वैयक्तिक मन की खोट से मुक्त है और उस श्रेणीजन्य शोषण पर प्रकाश डालता है जो आज जीवन की हर दिशा में दिखाई देता है।

यह नया भजन सुनिये :- लूट सके तो लूट
बाबा लूट सके तो लूट
दूर खड़ा क्या ताके सम्मुख सम्पति पड़ी अटूट
जनता का धन बहता पानी
भरते सभी तिजोरी ज्ञानी
इसमें कैसी बेईमानी
झूठी पाप-पुण्य की बानी
जिसमें चोला मगन रहे वह काम करेजा छूट

अनासक्त व्यंग का यह अच्छा नमूना है। भारतेन्दु युग से यह जन-काव्य की धारा अविच्छिन्न गति से वहती आई है और लोक-संदर्भ में वरावर वेग ग्रहण करती रही है। प्रगतिवादी दशाब्दों में भी इस धारा ने तत्कालीन विषमताओं और विडम्बनाओं को जनवाणी दी है। आज की दयनीय जीवन-स्थितियों से अधिक इसे "कच्चा माल" और प्रेरक विविधता कहां मिलेगी ?

हिन्दी काव्य में गीत-विधा एक विचित्र स्थिति में आकर ठहर गई है आधुनिकता का दावेदार नया कवि आध्यात्मिकता और व्यक्ति-निष्ठा को पुरातनता का ही "निर्मोक" मानता है और आधुनिकता की उसकी प्रक्रिया में उनके लिए कोई स्थान नहीं है। इनके भीतर से गुजर कर भी आधुनिकता को एक जीवनगत मूल्य के रूप में पाया जा सकता है, यह उसे मान्य नहीं है। नवगीतकार भी आधुनिकता का यह स्वरूप स्वीकार करने के लिए वाध्य है क्योंकि आधुनिक होना समकालीन साहित्य में जीवित रहने की पहली शर्त है। यदि आधुनिक होने का अर्थ जीवन को केवल भोगना नही वरन् उसे सोचना और संघर्षों के बीच बौद्धिक या विश्वबोध के समाधान प्राप्त करना भी है तो मुझे आपत्ति नहीं है। पर व्यक्ति को नकारना ही तो सांस्कृतिक संकट से ग्रस्त होने का नाम नहीं है। वदलते हुए आयाम और जीवन-परिवेशों में व्यक्ति को देखना और समझना भी गीत की प्रेरणा और परिणति वन सकता है। दूसरी ओर व्यक्तिचर्या के नाम पर अस्वस्थ अहं और असन्तोष के अतिशय अनास्थापूर्ण प्रदर्शन और आत्मघात को गीतों का विषय वनाकर उस क्षयी भावधारा को पनपाया जाता है जो जीवन के उर्ध्वमुख होने से कतई इन्कार करती है और मैली-मैली घिनरन, घुटन, टूटन को ही गीत का उपजीव्य मानती है। ऐसी "स्यूडो" आधुनिकता और आत्मअनुशासनहीन आत्मलिप्सा और आत्मवादिता दोनों से मुक्त रहकर स्वच्छन्द प्रकृति ज्योतिधर्मी गीतकार को सच्ची जिजीविषा को वाणी देनी है और मानव मन की

अतलस्पर्शिनी चिरजीवित जाग्रत ममता और निर्ममता को अभि-व्यक्ति देनी है। लोकजीवन और लोकरंजन से उसका गहरा संबंध बनाये रखकर उसे सौंदर्यबोध और युगबोध दोनों का सहयोगी बनाकर उसके भीतर के प्राणद "विटामिनों" को जिलाये रखना है। नयी कविता के आत्म-विघटन से उसे बचाना है। परन्तु नयी कविता की तटस्थता, मूल्य-भावना और शिल्पगत वैशिष्ठ को उसे अपनाना है। केवल गायन-क्रिया और कौशल पर वह टिक नहीं सकेगा।

अपनी बात को तनिक और स्पष्ट कर दूं। नयी कविता के शिल्प में एक सहज संस्कारशीलता है-सादगी, संक्षिप्तता और नोकोलेपन का एक अपना आघातकारी प्रभाव है जो उसकी अपनी रूपगत उपलब्धि है। मध्यकाल में जब घनाक्षरी और सवैया का बोलवाला था, कथ्य का यह नियोजन-कौशल अपने चरम उत्कर्ष पर पहुंच गया था। कविता का छन्दबद्ध होना या न होना अधिक महत्वपूर्ण नहीं है पर जहां कविता में चारुता की आंतरिक दीप्ति का स्थान वाह्यार्थ ले लेता है और कविता जरूरत से ज्यादा वाचाल हो जाती है वहीं काव्यत्व मरने लगता है। कविता में लम्बे-चौड़े आत्मपरिचयों, प्रवचनों और वर्णनात्मक मनोभाव-प्रकाशन का स्थान आज नपी-तुली चमकीली प्रभापूर्ण अभिव्यक्ति ने ले लिया है जो कहने से अधिक न कहकर झकझोरती है। सूक्ति का सा सौंदर्य और चोट इन छोटी-छोटी अतुकान्त कृतियों में होती है जो अपने घनेघने संपुंजित आशय में एक वृहत्तर आशय समेटे रहती हैं।

मैं चाहता हूं हरिठाकुर जैसे जागरूक गीतकार इस अभि-व्यंजना-कौशल को अपनाकर ऐसे मर्मस्पर्शी गीतों की सृष्टि करें जो अपने प्रभाव के लिए ठुके-पिटे मुहावरों पर आश्रित न होकर नयी-नयी कड़ियों और लयों की धारा बहावें, अनावश्यक आवेग

ग्रौर फैलाव से बचते हुए अनुभूति के सच्चे क्षणों को ऐसी सफाई ग्रौर घनीतिमा के साथ उतारें कि गीत स्वय अपने को गा उठे ग्रौर कवि-कंठ का मोहताज न रहकर स्वतः अपनी उच्छ्वसित भंगिमा बन जाय। मैं समझता हूं उनमें वह क्षमता है जो अर्थ ग्रौर व्यर्थ के भेद को पहचान कर स्वरों के भीतर से जीवन के सच्चे सजीव चित्र बना सकेगी।

मेरी शुभकामनायें उनके साथ हैं।

रायगढ़ 'ग्रंचल'
१५-१२-६५

गीत

झड़ी लगी।
वरखा की पहली ही बूंद
बड़ी-बड़ी लगी।

पेड़ अनमने से
भीगे अंधियारे में और लगे घने से
पानी की धार मुझे
गीतों की कड़ी लगी।

कितना ही वरजा
बेगरज वादल पर जी भर कर ही गरजा
बिजली जो चमकी तो
छाती में गड़ी लगी।

हवा चुलबुली सी
नोकीली, ठंडी सी और घुली-घुली सी
मुझको तो गालों पर
गाली सी जड़ी लगी।



गीत

फैल सकू उजियाला बन कर ऐसा मुक्त गगन दो।

अंधियारे के पिंजरे में
कब तक प्रकाश का तोता
रटे हुए जीवन की बोझिल
सांस रहेगा ढोता
बगरा दे हर गंध सुमन की ऐसा मुक्त पवन दो।
फैल सकूं उजियाला बन कर ऐसा मुक्त गगन दो॥

सांचे में ये ढले हुए दिन
रात, प्रहर, ये घड़ियाँ
साधें सदा जनमतीं पहने
चांदी की हथकड़ियाँ
जीवन जीने योग्य बने कुछ ऐसा आकर्षण दो।
फैल सकूं उजियाला बन कर ऐसा मुक्त गगन दो॥

हर तृष्णा जहरीली लगती
हर सपना भय कातर
हर अंकुर के ऊपर कोई
आग भरा सौदागर
हरियाली की नदिया सूखे कभी न, वह सावन दो।
फैल सकूं उजियाला बन कर ऐसा मुक्त गगन दो॥

फूलों को निर्वासित कर
काँटे बैठे आसन पर
प्राणों पर दुख का पहरा
ज्यों साँपों का चंदन पर
चंदन बने तिलक जगका, साँपों को निर्वासन दो।
फैल सकूं उजियाला बन कर ऐसा मुक्त गगन दो॥



गीत

याद आयी तेरी इस तरह
जैसे बादल से छन के किरन

आग जाने ये कैसी लगी
बन गये हैं समुन्दर नयन

मोड़ कर मुह वे ऐसे गये
जैसे गुजरे समय के चरन

रूप की ये नदी किसलिये
बढ़ गयी ग्रौर भी अब जलन

टूट कर आईने ने कहा
रूप लगता है क्यों निर्वसन



गीत

डाल से पत्ता झरा
क्योंकि वह फिर हो नहीं सकता हरा।

जो अनावश्यक
उसे झरना पड़ेगा
गति नहीं जिसमें
उसे मरना पड़ेगा
फूटे घड़े में जल न रह सकता भरा।

रिक्तता की पूर्ति
होती इस तरह
नव सृजन की स्फूर्ति
होती इस तरह
एक गिरता, खड़ा होता दूसरा।



गीत

पीड़ा के पिंजरे में सपनों का सुआ–
कैद आज हुआ।

रातों के बाहुपाश
पड़े नहीं ढीले
भावों के भीत भरे
मुख लगते पीले
विरहा की ज्वाला ने प्राणों को छुआ।

सांसों के छंद आज
लगे लुटे–लुटे
श्रद्धा के तिनके तक
आज नहीं जुटे
उठा आज नस–नस से दर्द का धुंआ।

अंधियारा छाया है
प्राणों पर दुहरा
उम्र के मुहाने पर
छाया है कुहरा
मौत खेल रही आज जीवन से जुआ।

●

-

गीत

पीड़ा की हल्दी से मेरे मन का आंगन पीला-पीला।

याद तुम्हारी बांधे हूं मैं
इन सांसों की जंजीरों में
तौल रहा हूं पायल की ध्वनि
में धड़कन की मंजीरों में
इन आँखों में छाया है सपनों का सावन गीला-गीला।
पीड़ा की हल्दी से मेरे मन का आंगन पीला-पीला॥

जब से बांधा तुमने मेरे
गीतों को अपने आँचल में
नूतन जल उमड़ा है तेरे
आशीर्वादों के बादल में
ठीक तुम्हारी चितवन जैसा अम्बर का तन नीला-नीला।
इन आँखों में छाया है सपनों का सावन गीला-गीला॥

जाने क्यों मेरी तृष्णा का
गांव नहीं बसता है पूरा
यह कौमार्य न पूरा होता
रह भी पाता नहीं अधूरा
असमंजस में लगता है प्राणों का बंधन ढीला-ढीला।
पीड़ा की हल्दी से मेरे मन का आंगन गीला-गीला॥

गीत

खुल गये घाव के टांके
याद किसी के आये बादल-पंखी नयना बांके।

बहुत दिनों के बाद
दर्द का खोया छोर मिला
जला निरंतर दीप
कहीं तब उसको भोर मिला
करुणा के आरक्त क्षितिज से पीर किरन की झांके।
याद किसी के आये बादल-पंखी नयना बांके॥

सुलग रहे हैं गाल दिवस के
धूप पक गयी है
वृक्षों की मर गयी छांह
चेतना थक गयी है
सुधियों की धेनुएं बनातीं बादल धूल-धुआं के।
याद किसी के आये बादल-पंखी नयना बांके॥



शंखीली आंखें

तेरी शंखीली आँखों की पांखें सहमी-सहमी।
प्राणों पर पीड़ा का कुहरा, साँसों में दंशन क्यों ?

चुम्बन की चर्चा से तेरे
अधरों का घर खाली
आलिंगन की आग बुझी
झुलसी भौहों की डाली
जला स्नेह का संबल, टूटी धड़कन की मालायें।
कांप रहे हैं पांव टपकती है गति में टूटन क्यों ?

इस दूरी की निर्धनता में,
सिर तक जीवन डूबा
कहां अकम्पित प्यार तुम्हारा
रीतेपन से ऊबा
पलकों की बूंदों की झालर झिलमिल शबनम जैसी।
दूर उदासी की राहों में सिमटा प्राण-पवन क्यों ?



शायद

शायद तुमने गीत कहीं गाया है–
क्या इसीलिये यह मौसम गदराया है ?

यह नदी कि जिसकी जलती अन्तर्धारा
ऐंठी सी कोई तड़प रही है मछली
इस ग्रंधियारे की हथकड़ियों में कोई
टूटी–टूटी सी देह किरन की मचली

शायद दरकी है कहीं क्षितिज की छाती
आकाश नये रंगों में बदराया है।

शायद तुमने गीत कहीं गाया है–
क्या इसीलिये यह मौसम गदराया है ?

लगता है बादल आज कहीं बरसेगा
भर आयी होगी हरियाली की आँखें
सुधियों के पिंजरे में हर बंद पखेरू
क्यों मांग रहा अधखिले फूल से पांखें

शायद फिर कोई आँख आज डब-डब है–
इसलिये गगन का कोना भर आया है।

शायद तुमने गीत कहीं गया है–
क्या इसीलिये यह मौसम गदराया है ?



गीत

यह कैसा सावन है जिसमें हर नयन जलाशय लगता है !

सुधियों की हरियाली तितली
वनकर पसारती है पांखें
हर सुवह उठाती-धुली पलक
हर शाम झुकाती है आँखें
हर फूल गंध के गांवों का सिमटा मदिरालय लगता है।
यह कैसा सावन है जिसमें हर नयन जलाशय लगता है !

हर धूप अनमनी अंगड़ाई
लेकर मेघों में समा गयी
हर रात स्वप्न की साँसों में
चन्दन की खुशबू रमा गयी
हर गीत तरसते ओठों पर ऊबों का संचय लगता है।
यह कैसा सावन है जिसमें हर नयन जलाशय लगता !

घुल-घुल जाती मुस्कान
फूल की छल-छल करती सी प्याली में
माथे की बिंदी-
दीपक जैसे फूल-कांस की थाली में
हर रूप नदी सा भरा हुआ, हर दरस हिमालय लगता है।
यह कैसा सावन है जिसमें हर नयन जलाशय लगता है!

●

गीत

नयन उदास भये।
मेघ छये ॥

सारा दुपहर सूना
बीत गया।
रीत गया
सूखा चौमास
करके दुख दूना।

शिशिर में झुलस गये
फूल नये
वेणी के।
सुलग रहे सपने मृगनैनी के।
धुंगियाते पर्वत वेचैनी के ॥

फागुन में फूल खिले
अलसाये
गंध वही किन्तु
देह बिना छुए
रंग चुके
बिना चुए
ओठों में गीत अस्त बिना उये।



बहुत दिनों के बाद उदासी छाई

(१)

जैसे कोई भटका टुकड़ा बादल का
बचपन की पीड़ा का वह बीमार स्पर्श हल्का-हल्का
साँझ किसी सूनी घाटी में और अधिक गहराई।
बहुत दिनों के बाद उदासी छाई॥

(२)

जैसे कोई अक्षर उभरे काजल का
जैसे कोई गीत सुलगती आँखों से छलका-छलका
अधकुचली, अधमरी याद फिर भूखी-प्यासी आई।
बहुत दिनों के बाद उदासी छाई॥

(३)

ख्याल मुझे आता है उस कच्चे फल का
टूट गया जो पीते-पीते दूध किसी के चलदल का
बहुत दिनों के बाद हवा ने बात वही दुहराई।
बहुत दिनों के बाद उदासी छाई॥

●

गीत

सपने बदराये
साधें सब गुंगवातीं
रातें सब कुंवरातीं
सूने में असकट जी उरझे--मुरझाये ।
सपने बदराये ।।

भेजी ना पाती लिख
विरहा अति महुरा-विख
पीड़ा यह नख से शिख, अँसुआं अँकुराये ।
सपने बदराये ।।

बीते दिन, जुग, बच्छर
माथे सेन्दुर भर कर
बैठी यौवन-पथ पर अँचरा बगराये ।
सपने बदराये ।।

बादर-पाती

प्रिय ने भेजी बादर पाती
फैले बादर के कागद पर
बिजुरी के लहराते अक्षर
बादर के प्रत्येक पृष्ठ पर
आँसू के चांउर बगराती।
भेजी प्रिय ने बादर पाती।

भींज रही है ठाढ़े अँगना
मींज रही हाथों से फुंदना
बजा रहो है झुमके-कंगना
देह सुलगती है पिउराती।
भेजी प्रिय ने बादर पाती।।

किरन अधर पर तिरछी मचली
बिछल रही नयनों की मछली
उझक रही सोने की हँसली
अइलाई निबुआ गदराती।
भेजी प्रिय ने बादर पाती।।

आज नार फिर से हरियाई
अँगना तरुनाई छरियाई
चंदन देह मुसक लहराई
पाती लगा-लगा के छाती।
भेजी प्रिय ने बादर पाती।।

●

बंधी आज की रात

बंधी आज की रात बावरी सी सुगंध की डोर में।
उजले-उजले दाग याद के मिले दरद के छोर में॥

तोड़ नयन-पिंजरा अँसुओं का,
सुअना पांखें खोल रहा।
मेरे उजले मन में कोई
अंधियारा सा घोल रहा॥
डूब रहा मस्तूल सपन का इन साँसों के शोर में।
बंधी आज की रात बावरी सी सुगंध की डोर में॥

झरी चांदनी की पंखुरी से
बही लहू की धार है
दिल के पहले प्यार टूटने
से होती झनकार है।
तृष्णा की तितलियां बिलखती है भावों के भोर में।
बंधी आज की रात बावरी सी सुगंध की डोर में॥

यह सुगंध की डोर टूटती
आवारा सी रात है
कैसे कहूं हवा के होठों
पर किस दिन की बात है
बदनामी की बिजली चमकी आज घटा घनघोर में।
बंधी आज की रात बावरी सी सुगंध की डोर में॥

●

चांद

रात की गठरी उठाये चल रहा है चांद
सांझ के घर से निकल कर भोर के उस पार तक।

बहुत मुरझाई हुई सी चू रही है चांदनी
मौन धरती के अधर को छू रही है चांदनी
ठंड के बिस्तार को ताने हुए बहती हवायें
पीर के पर्वत उठाये चल रहा है चांद
लांघ कर सुनसान, उठते शोर के उस पार तक।

रात की गठरी उठाये चल रहा चांद
सांझ के घर से निकल कर भोर के उस पार तक।

मंदिरों की घंटियों की खुल रही आवाज
घूंघटों में नयन की फिर घुल रही है लाज
मिट रहा है दर्द नस का, रक्त है गतिमान
तिमिर की ठठरी उठाये चल रहा है चांद
स्वप्न की आंसू भरी इस छोर के उस पार तक।

रात की गठरी उठाये चल रहा है चांद
सांझ के घर से निकल कर भोर के उस पार तक॥

●

निर्मोही बादल

हवा सांप की जीभ सरीखी उगल रही है तेज हलाहल।
मेरे नभ का आँगन सूना, दूर कहीं निर्मोही बादल ॥

मौसम जलन, उमस का कब तक
घिरा रहेगा इन साँसों पर
कब तक और जलेगा दीपक
बिना स्नेह के विश्वासों पर
कब तक सीचेंगी ये पलकें सुधि की तुलसी को गंगाजल।
मेरे नभ का आँगन सूना, दूर कहीं निर्मोही बादल ॥

मूर्ति आज खण्डित श्रद्धा की
प्राण स्वयं से ऊब गये हैं
पिछले सारे पुण्य चुक गये
स्वप्न मृषा में डूब गये हैं
गीतों के स्वर सातों सूखे, केवल शब्दों का कोलाहल।
मेरे नभ का आँगन सूना, दूर कहीं निर्मोही बादल ॥

●

गीत

एक झनकती पायल प्राणों को सूना कर देती है।
एक खनकता कंगन मन के चंदन को सुलगाता है॥

मेंहदी वाली हथेलियों ने लूट लिये सपनों के क्षण
और महावर वाले पांवों ने कुचले सब संवेदन
यह फागुन का मौसम मेरे आँसू का त्यौहार बना
अंगारों का हार हृदय की धड़कन का शृंगार बना

मुरझाये वे कमल नयन बंदी थे जिनके सम्पुट में।
गीत भरा आँचल जाने किन खेतों पर लहराता है॥

जिन कंठों का भोर गूंजता था इन क्वारी गलियों में
आज यहां अँधियारा, सूरज डूब गया है कलियों में
अनचाहा यह प्यार न जाने कब तक ठोकर खायेगा
पीड़ा के मरघट में धूनी कब तक और रमायेगा

मेरा प्यार बना है जोगी, विरहा भसम लगाता है।
हर मौसम के द्वार-द्वार पर बीती-अलख जगाता है॥

एक झनकती पायल प्राणों को सूना कर देती है।
एक खनकता कंगन मन के चंदन को सुलगाता है॥

●

गीत

सावन-भादो जैसे नयना भरे तुम्हारे नेह से।

मेरे गीत गुलाब खिले फिर
जिस आँचल की छाँव में
प्यार महावर बन कर लिपटे
जिसके कोमल पाँव में
चंदन की खुशबू आती है, उसकी कुंदन देह से।
सावन-भादो जैसे नयना भरे तुम्हारे नेह से॥

रतजागे-रतनारे नयनों पर
लज्जा का भार है,
गर्म अधर की नर्म कोर में
चुम्बन का घनसार है
अमरित की रसधार बरसती तीतर-पंखी मेह से।
सावन-भादो जैसे नयना भरे तुम्हारे नेह से॥

आज तपस्या के फल जैसो
जब तुम मेरे पास हो
मेरे सपनों के अब तुम ही
धरती भी आकाश हो
आज ज्योति हो रही मुक्त है अंधकार के गेह से।
सावन-भादो जैसे नयना भरे तुम्हारे नेह से॥

●

गीत

आज पहन कर रात खड़ी है तारों की हथकड़ियां,
लेता होगा चांद जलधि की लहरों में अंगड़ाई।

केसर का त्योहार मनाया
जाता है फागुन में।
सपनों का मधुमास डूबता,
मंजीरों की धुन में।
आवाजों की लहरें उठतीं,
शब्दों के मुंह चमके।
भावों पर से आज उठ गये
पर्दे लाज शरम के।

जिन प्राणों पर बीत रही हैं इंतजार की घड़ियां,
उनका मीत न माने किसको बेच चुका तरुणाई।

पीड़ा की पायलिया झमकी,
सांसों की गलियों में।
मन का सौरभ तड़प रहा है,
आंसू की कलियों में।
आज दर्द की चादर ओढ़े
हवा गीत गाती है।
सुन-सुन कर फटती मेरे
विश्वासों की छाती है।

शायद उनके होठों पर हों सुधियों की फुलझड़िया,
करती होगी देह किसी का वाहों की पहुनाई।

पत्थर पर यदि शवनम अपने
प्राण निछावर करती
पत्थर का क्या दोष, मीत !
यह शवनम की है गलती।
किन्तु किसी का दोष, किसी की-
गलती ही, दुनिया है।
इसी तरह तो रोज-रोज,
यह चलती ही दुनिया है।
जिन आहों की लू से झरती प्रीतों की पंखुड़िया,
उनके सपनों के पतझड़ में वजती है शहनाई॥



गीत

क्यों अटूट सौंदर्य देखकर टूट-टूट जाता है मन

यह कतिक की धूप सरीखा
रूप तुम्हारा कोमल
होता उतना साफ कि जितना
होता जाता ओझल
संध्या की झुटपुट में तेरी एक झलक के कारण
इन आँखों में छाया रहता है सपनों का मधुवन

यह दूरी की डोर कि काटे
भी तो तनिक न कटती
इधर साँस की अवधि
जिन्दगी में प्रतिपल है घटती
काजर वाली कोर तुम्हारी, काँटों वाली भौहें
आज दूज के चाँद सरीखी लगी तुम्हारी चितवन

आँचल की निगरानी में जो
रुकती-झुकती आँखें
जैसे पिंजरे के पंछी की
गयी तरासी पाँखें
अधरों की नीलाई में यह मुस्कानों की मछली
तैर रही है लिये जवानी के गीतों का गुंजन।

शायद उनके होठों पर हों सुधियों की फुलझड़ियाँ,
करती होगी देह किसी की बाहों की पहुनाई।

पत्थर पर यदि शबनम अपने
प्राण निछावर करती
पत्थर का क्या दोष, मीत!
यह शबनम की है गलती।

किन्तु किसी का दोष, किसी की–
गलती ही, दुनिया है।
इसी तरह तो रोज-रोज,
यह चलती ही दुनिया है।

जिन आहों की लू से झरती प्रीतों की पंखुड़िया,
उनके सपनों के पतझड़ मे बजती है शहनाई॥



गीत

क्यों अटूट सौंदर्य देखकर टूट-टूट जाता है मन

यह कतिक की धूप सरीखा
रूप तुम्हारा कोमल
होता उतना साफ कि जितना
होता जाता ओझल
संध्या की झुटपुट में तेरी एक झलक के कारण
इन आँखों में छाया रहता है सपनों का मधुवन

यह दूरी की डोर कि काटे
भी तो तनिक न कटती
इधर साँस की अवधि
जिन्दगी में प्रतिपल है घटती
काजर वाली कोर तुम्हारी, कांटों वाली भौहें
आज दूज के चांद सरीखी लगी तुम्हारी चितवन

आंचल की निगरानी मे जो
रुकती-झुकती आंखें
जैसे पिंजरे के पंछी की
गयी तराशी पांखें
अधरों की नीलाई में यह मुस्कानों की मछली
तैर रही है लिये जवानी के गीतों का गुंजन।



मेरा चांद

बादल की गोरी बांहों में सो गया चांद है मेरा।

है विह्वल रही चांदनी
घने वृक्षों की कोमल शाखों पर
सपनों की छुपती परिभाषा
अंधी आशा की आंखों पर
पत्तों की सूनी आवाजें
कब्रों में काट रहीं चक्कर
फूलों के इन दरगाहों में खो गया चांद है मेरा।
बादल की गोरी बांहों में सो गया चांद है मेरा॥

मछलियां तड़पती किरनों की
रेतीले पीर-कछारों में
गीतों की नावें डूब रही
अधरों की इन मंझधारों म
हरियाली की ढल गयी उमर
कुबड़े पर्वत ने व्यंग किया
यह वही जगह है जहां अश्रु बो गया चांद है मेरा
बादल की गोरी बांहों में सो गया चांद है मेरा॥



गीत

कजरारे ये नैन तुम्हारे लगते हैं रतनारे क्यों ?
बाहों की चम्पई छांह में झलझल उठे शरारे क्यों ?

आज चांदनी की अंगिया में
तेरी देह सुडोल है
झीने घूघट की झांई की
झालर यह अनमोल है
खनकी चूड़ी उधर, इधर दिल में होती झनकारें क्यों ?
कजरारे ये नैन तुम्हारे लगते है रतनारे क्यों ?

शायद लाज उतर आयी है
इन आँखों की कोर मे
कैद हो गयी नीद पलक की
इन पाखों के शोर में
अभी भोर है दूर, बुझाती जलते हुए सितारे क्यों ?
कजरारे ये नैन तुम्हारे लगते है रतनारे क्यों ?

गमक रही चितवन की चम्पा
ओंठ गीत मे चूर है
गेंदे का यह फूल केश में,
किरनों सा सिन्दूर है
अंत विरह की परिधि हमारे पर अरमान कुंआरे क्यों ?
कजरारे ये नैन तुम्हारे लगते है रतनारे क्यों ?

सपनों की अब खिली पखुरियाँ
अंगड़ाई में पीर है
गदराये अधरों में
मुस्कानों की छिपी लकीर है
पांव परेवा जैसे, जावक लगते प्यारे-प्यारे क्यों ?
कजरारे ये नैन तुम्हारे लगते हैं रतनारे क्यों ?

अपनी आंखों से ही तेरी
रोज उतारूं आरती
तुम मेरी श्रद्धा को युग-युग
अविचल रहो संवारती
आज जागरण के क्षण लगते हैं इतने उजियारे क्यों ?
कजरारे ये नैन तुम्हारे लगते हैं रतनारे क्यों ?

●

गीत

ढले रात भर आँसू
आँखों के दीपक में मेरे जले रात भर आँसू।

होती थी आवाज नसों में
बन लोहू की धारा
सपनों की खाई में डूबा
मन का कूल-किनारा
तृष्णाओं के नाग घेरते रहे प्राण को मेरे
लिये याद की अर्थी कंधे चले रात भर आँसू।
ढले रात भर आँसू॥

जहर उगलती रही चांदनी
हवा लगाती फाँसी
प्रोस चाटता रहा रात भर
अंतर का अधिवासी
नींद न आयी हाथ, जागरण बना हुआ था सूली
अंगारों के हाथों फूले-फले रात भर आँसू।
ढले रात भर आँसू॥



सूर्य ; मैं

सुबह से शाम तक चला
कही भी टिका नहीं

छांहों ने टोका
फूलों के रंगीन
चौराहों ने रोका
लेकिन कर्तव्यों के बोझों से लदा
कही भी छिका नहीं ।

शाम से सवेरे तक
अँधेरे ने रोका
तारों के बिछा दिये कांटे
हवा ने सन्नाटे
लेकिन कर्तव्यों के बोझों से लदा
सिक्कों में बिका नहीं ।



गीत

मैंने जिन गीतों को अपने प्राणों के क्रन्दन में बांधा–
उनमें फूल महकते और दहकते कुछ अंगारे भी हैं।
मैंने जिन आहों को अपने दिल की धड़कन में गूंथा है–
उनमें कुछ चांदनी वरफ सी, कुछ ज्वाला के नारे भी हैं॥

कुछ मेरी बातें हैं ऐसी
जो लोहू से छनी हुई हैं
कुछ ऐसी पीड़ायें ह जो
ठोकर खाकर बनी हुई हैं
मैंने शब्दों के सांचे में जिन भावों को अब तक ढाला–
उनमें कुछ जलते दीपक, कुछ टूटे हुए सितारे भी हैं।

मैं ऊंचे पर्वत की जड़ता
पर जो रीझा, बड़ी भूल की
हंस समझ कर बगुलों की
बस्ती में बस कर बड़ी भूल की
मेरे उद्‌गारों ने अपने पैरों की जंजीर तोड़ दी–
उनमें कुछ शंखध्वनि, कुछ तलवारों की झनकारें भी है।

किन्तु किसी की इच्छाओं पर
सांसों को बदनाम करूं क्यों?
मैं अपने ईमान और विश्वासों
को नीलाम करूं क्यों?

जिस अभाव के दर्पण में असफलताओं के मुंह हैं
उनमें मेरे स्वाभिमान के जलते हुए इशारे भी।

ऐसे कुछ अनुभव की लिपियां
बन कर गीत उभर आती हैं
और वर्णतायें विभिन्न कुछ
शब्दों में घर कर जाती हैं।

मैंने जिन गीतों को अपने प्राणों के क्रन्दन में बांधा
उनमें से कुछ तीखे, खट्टे, कुछ मीठे, कुछ खारे भी हैं



गीत

पीकर रहे न होश–
मुझे तुम इतना दर्द न दो।

बाहर से अटूट
पर भीतर कितना टूट गया
तुमको क्या मालूम
कि क्या–क्या पीछे छूट गया
गीत बने खामोश
मुझे तुम इतना दर्द न दो।

विश्वासों की छाती से
बह रही लहू की धार
नस–नस में अब धधक उठा है
विस्मृति का अंगार
चुके सांस का कोश
मुझे तुम इतना दर्द न दो।



तुम्हें आवाज लगाता हूं

ओ ! गांव, खेत, खलिहान, नदी, सागर, पर्वत, घाटी
मैं सूर्य-किरन के साथ तुम्हें आवाज लगाता हूं !!

प्रत्येक दिशा का छोर पकड़ कर
उठो, उठो, तुम उठो
तुम छोड़ रात का हाथ
भोर की डोर पकड़ कर उठो
जिनकी पलकों पर बरफीली निद्रा का पर्तें हैं-
मैं उनके दिल की धड़कन में उद्गार जगाता हूं-॥ओ....

जो बांध पेट में पत्थर
नवयुग का पथ मोड़ रहे
जो अपनी बोटी काट
देश की क़िस्मत जोड़ रहे
जो सहते हैं अन्याय ओंठ को सीकर जीते हैं
मैं उन ओंठों को इंकलाव के बोल सिखाता हूं ॥ ओ.....



गीत

अंगारों के हाथ न सौंपो फूलों की रसधार को।

लहरों के यौवन को बांधो मन के मीठे तार से
अरमानों का आंगन भर दो गीतों की झनकार से
खुशबू की खामोशी खोलो, भय की पांखें काट दो
जिन पौधों पर कांटे जन्में उनकी शाखें काट दो

पतझर के हाथों मत सौंपो कलियों भरी बहार को।
अंगारों के हाथ न सौंपो फूलों की रसधार को।।

आज हवाओं के पांवों में बारूदी जंजीर है
संगीनों की झनकारों में कैद पड़ी मजीर है
नीर भरी सपनों की आंखें, पीर भरी हर रात है
धरती के धानी आंचल में लोहू की बरसात है

तलवारों के हाथ न सौंपो जीने के अधिकार को।
अंगारों के हाथ न सौंपो फूलों की रसधार को।।

चांदी की कब्रों में सोयी ईमानों की लाश है
अंधियारे की मुट्ठी में यह धरती है, आकाश है
धरती के माथे से लुटता आज सृजन का ताज है
सन्नाटे का पांव कुचलता किरनों की आवाज है

अंधियारे के हाथ न सौंपो किरनों के व्यापार को।
अंगारों के हाथ न सौंपो फूलों की रसधार को।।

जीवन का अस्तित्व फंसा है आज मरण के
छेद घृणा-भय के कितने हैं मानवता की
फसलों की लहलही फबन पर [illegible]
श्वासों की गलियों में बिखरी श्रद्धाओं की [illegible]

अरे ! चिता के हाथ न सौंपो यौवन भरे दुलार को।
अंगारों के हाथ न सौंपो फूलों की रसधार को॥



दो नये भजन

(१)

लूट सके तो लूट
बाबा लूट सके तो लूट

दूर खड़ा क्या ताके सम्मुख सम्पत्ति पड़ी अटूट।
जनता का धन बहता पानी
भरते सभी तिजोरी ज्ञानी
इसमें कैसी बेईमानी
झूठी पाप-पुण्य की बानी
जिसमें चोला मगन रहे वह काम करे जा छूट।
बाबा लूट सके तो लूट॥

(२)

सुन भई साधो।
साध सको तो स्वारथ साधो।

फाड़ो परमारथ का झंडा
लेकर निकलो केवल डंडा
बन कर राजनीति का पंडा
खड़ा करो नित नया वितंडा
अपना और पराया कैसा ? सारा धन अंटी में बांधो।
सुन भई साधो।
साध सको तो स्वारथ साधो।



गीत

रुक न मेरा मीत
रह गया लाख बरज कर।

डूब गया है
अंधकार मे संध्या का रव
हवा सिसकती रही
उठाये फूलों का शव
तारों के दृग गये डबडबा
सूनसान में।

बाहर–भीतर सभी जगह
पीड़ा प्रहरी है
जमुना जैसी रात
बहुत काली गहरी है।

निर्जनता की गोद पड़ा पथ
नींद ले रहा
शब्द हो गये मौन
अर्थ की तृषा सिरज कर।



फागुन में

फूलों का मन कैदी भौंरों के गुनगुन में

मचल रही गंध आज
नवऋतु की शाखों पर
बिछल रहे सपनों के
पांव खुली आँखों पर
किसका संदेश भरा है बंशी की धुन में।
फूलों का मन कैदी भौंरों के गुनगुन में॥

गीतों की गलियों में
भावों का भोर हुआ
यौवन के आंगन में
किरनों का शोर हुआ
पीड़ा अंगड़ाई ले रही भरे फागुन में।
फूलों का मन कैदी भौंरों के गुनगुन में॥

सूरज के ओठों पर
श्रम की शहनाई है
धरती के गालों पर
ऊगी तरुणाई है
डूब रहा मन संध्या की झुंझकुर रुनझुन में।
फूलों का मन कैदी भौंरों के गुनगुन में॥

●

गीत

भर गयी अंगड़ाइयों में घाम
साँस में जलती हुई बरसात
ओंठ पर चूसे हुए ये गीत
गुनगुना सकती नहीं है रात

आज कोमल चांदनी की देह
रह गयी बन एक मुट्ठी धूल।

बोझ सी लगती हवा, ये साँझ
फूल की बासी पड़ी है बास
स्पर्श का मधु पी गया है सर्प
ऊंगलियों की है अधूरी प्यास

दर्द की सूली टंगे हैं प्राण
स्वप्न की काया रही है भूल।

मन का शिलालेख

तृष्णा की दोपहरी में जब छांह नहीं मिलती है
प्राणों को सपनों के आगे राह नहीं मिलती है
तब मेरी पलकें ही मेरे आँसू को पी जाती
किसने किया इशारा अपना दर्द पिये लेता हू।

कहां खिली है धूप रूप की, कहां याद के बादल
सपनों पर लग गया कहां से, किन नयनों का काजल
सिहरन के ये फूल खिले ये किन अधरों की खातिर
इन गीतों को मिले कहां से, किन पांवों की पायल

इसी ख्याल में डूबा-डूबा प्राणों का जलयान
कितना है फासला रक्त औ, पानी के दरम्यान
इस रहस्य का पता किसी दिन लग जायेगा मुझको
इसीलिये बादली उम्र के साथ जिये लेता हूं। किसने किया इशारा...

मेरे मन के शिलालेख पर पीड़ा के अक्षर हैं
यहां भूल के हर टीले पर साँसों के पतझर हैं
यहीं कहीं पर छूट गया है सपनों का हमराही
यहीं कहीं पर भाग्य जहां पर फूटा, वे पत्थर हैं

यहीं कहीं पर उतरी होगी सुधियों की वह साँझ
यहीं कहीं पर ठूंठ सरीखी आकांक्षायें बांझ
यहां रात के साँचे में चांदनी नहीं ढलती है
इसीलिये मैं अंधकार की ओट किये लेता हूं। किसने किया इशारा....

मेरे मन के शिलालेख को वांच सको तो बांचो
इन गीतों को पहन स्वरों नाच सको तो नाचो
पीड़ा के अक्षर-अक्षर को अर्थ नया दे डालो
नये सत्य के साँचे में अब नये स्वप्न को ढालो

आज रक्त के साथ खौलता हुआ नया विश्वास
मांग रहा है आज भाग्य से सपनों का मधुमास
देखूं कब तक दुहराता है अपने को इतिहास
मैं तो सारी घटनाओं साथ लिये लेता हूं। किसने किया इशारा...



गीत मेरे

कल्पना के कारखाने में न ढलते गीत मेरे
गोद में अनुभूतियों की रोज पलते गीत मेरे
आँसुओं का दूध पीकर, दर्द में झूला किये जो
झोपड़ी के दीप बन कर रोज जलते गीत मेरे।

अक्षरों की बांह चढ़ कर ये अनश्वर हो गये हैं
वर्णताओं की परिधि में घुल गये हैं, खो गये हैं
धूल–मिट्टी में सने ये, मोम से कोमल बने ये
आंच पा कर आह की गलते–पिघलते गीत मेरे।

मर्म की ममता बहुत है, बुद्धि की शर्तें नहीं हैं
एक झीना आवरण है, प्याज की पर्तें नहीं है
वे इन्हें गा लें कि जिनके ओठ सूने प्यार से हों
दूसरों के प्राण बहला कर बहलते गीत मेरे।

भाव की इन पंक्तियों में फूल का शृंगार भी है
विप्लवों की आग की तलवार की झनकार भी है
शोषितों की आह, दलितों के हृदय का दाह इनमें
हैं समय की धड़कनों के साथ चलते गीत मेरे।



मैं पिंजरा उड़ जाऊं कैसे ?

तुम पत्थर बन जाओ लेकिन मैं पत्थर बन जाऊं कैसे ?

तुम मेरे अन्तर की पीड़ा
बन कर सदा कसकती तो हो
तुम मेरी आंखों में बन कर–
सावन, सदा बरसती तो हो

ठोकर खाकर भी लहरों ने
तट से कभी न तोड़ा नाता

तुम पंछी हो उड़ जाओ पर मै पिंजरा उड़ जाऊं कैसे ?
तुम पत्थर बन जाओ लेकिन मैं पत्थर बन जाऊं कैसे ?

तुम हो वैभव की हरियाली
मैं अभाव का सूना पतझर
तुम मंज़िल के पार खड़ी हो
मैं चल रहा अभी तक पथ पर

मैंने सदा पराजय झेली
तुम हो सदा विजय के रथ पर

मैं अपनी कागज की नैया दुर्दिन पार लगाऊं कैसे ?
तुम पत्थर बन जाओ लेकिन मैं पत्थर बन जाऊं कैसे ?

●

गीत

मेरे पथ के प्रदीप एक प्रहर और जलो।

कौन रात ऐसी जो
बीत नहीं जाती है
कौन सांस ऐसी जो
जीत नहीं जाती है

कौन पंथ ऐसा जो
अंतहीन होता है
मेरे ओ थके पांव, एक चरण और चलो।

स्वप्न रुको, तुम भी तो
मेरे हमराही हो
सत्य-जन्म के तुम ही
आखिरी गवाही हो

मेरे सूनेपन में
सपने तुम साथ रहो
मेरे ओ सपने तुम एक बार और छलो।

मंजिल है डूब रही
नयनों की राहों में
साहिल बंध रहे आज
लहरों की बांहों मे

धड़कन में किरनों की
गंध नयी गुंथने दो
चट्टानी अहं ! ज्योति-ज्वाला में गलो गलो !



गीत

दूर पिया का गांव रे !
नीचे डगर कंटीली, ऊपर खूब दरद की छांव रे !
दूर पिया का गांव रे !!

इस पंथी का मीत न कोई
परछांई का साथ है
इस पंथी का गीत न कोई
सांसें बहुत अनाथ हैं

धड़कन का मंजीरा बजता
आंसू बना सितार रे !
मिली प्रेम की बानी, प्रिय को
जब तक बने पुकार रे !
जीत-हार के, पाप पुण्य के परे प्राण का दांव रे !
दूर पिया का गांव रे !!

रात घिरी है, अंधियारे में
छूट गई परछांह भी
छुड़ा रही है अब ये यादें
मुझसे अपनी बांह भी

जितनी दूर उषा से संध्या
उतनी प्रिय से दूर हूं

इधर नसों का लहू चुक रहा
थक कर बिलकुल चूर हूं
बात तभी जब मिलो पिया तुम रुके जहां पर पांव रे!
दूर पिया का गांव रे!!



गीत

यह मुझको बतलाए कोई–कैसे दीप जलाए कोई ?

सावन–भादो सूखे बीते
आँखों के सपने सब रीते
जीने का जब अवसर आया
मरने के जुट गये सुभीते

रोज लहू के आंसू पीकर
कब तक यों मुस्काए कोई
यह मुझको बतलाए कोई–कैसे दीप जलाए कोई ?

फूलों पर सन्नाटा छाया
मुख हरियाली का मुरझाया
फसलों का सिंदूर लुट गया
हर मौसम पतझर बन आया

जहां चिता की राख गरम है
कैसे फूल खिलाए कोई
यह मुझको बतलाए कोई–कैसे दीप जलाए कोई ?

फंदा सब पर है अभाव का
नाम नहीं है कहीं छांव का
नगरों की सड़कें उदास हैं
सूना है पथ अभी गांव का

पनघट ही जब प्यासा है तब
कैसे प्यास बुझाए कोई
यह मुझको बतलाए कोई–कैसे दीप जलाए कोई ?

भीतर सब कुछ टूट गया है
पीछे सब कुछ छूट गया है
जाने किस पत्थर से टकरा
भाग्य देश का फूट गया है

व्यर्थ गया जब लहू पसीना
फिर क्या और बहाये कोई
यह मुझको बतलाए कोई–कैसे दीप जलाए कोई ?



पोखर भर आये हैं

बादल कजराये हैं
पोखर भर आये हैं
हरियाली बगर गयी
सपने पँखुराये हैं

मन आँगन गीला है
अंग-अंग ढीला है
सावन में हो जाता
हर दरद नुकीला है

पलकों की फुनगी पर
आँसू अँकुराये हैं
बादल कजराये हैं
पोखर भर आये हैं।

उम्र सरक जाती है
पीड़ा गदराती है
जलबुंदियों से छाती
और दरक जाती है

जितना विष पिया
ओठ उतने मधुराये हैं
बादल कजराये हैं
पोखर भर आये हैं।

बादल

हवा में पंख फैलाये
गगन में थम गये बादल
घुमड़ कर, झूम कर तनकर
गगन में रम गये बादल

उफनने लग गयीं नदियां
छलकने लग गये पोखर
निखर आयी युवा धरती
हरेपन से नहा-धोकर

दिशाओं की हथेली पर
दही से जम गये बादल
घुमड़कर, झूमकर, तनकर
गगन में रम गये बादल

न कोई खेत है भूखा
न कोई आंख है प्यासी
उधर खेतों में हलचल है
इधर मन में हुई ब्यासी

कहीं मेंहदी रची होगी
कहीं पर अँज गये काजल
हवा में पंख फैलाये
गगन में थम गये बादल

कि सौरभ देह में भर कर
कहीं कुछ फूल क्या फूले
अभी सावन नहीं आया
कि बाँहों के पड़े झूले

कि सपने इस तरह आये
लगे हरदम नये बादल
घुमड़कर, झूमकर, तनकर
गगन में रम गये बादल

●

गीत

यौवन ही जब बीत गया तब फिर अर्पण में शेष रहा क्या ?
सपने टूट गये तब नयनों के दर्पण में शेष रहा क्या ?

औट गया आँसू का सागर
लौट गया सावन-सौदागर
तृष्णाएं मर गयीं कि पनघट-परिवर्तन में शेष रहा क्या ?
यौवन ही जब बीत गया तब फिर अर्पण में शेष रहा क्या ?
सपने टूट गये तब नयनों के दर्पण में शेष रहा क्या ?

पीड़ाओं ने जिसे डसा है
प्यार न जिसका कहीं बसा है
उस बंजारे की बांहों के आकर्षण में शेष रहा क्या ?
यौवन ही जब बीत गया तब फिर अर्पण में शेष रहा क्या ?
सपने टूट गये तब नयनों के दर्पण में शेष रहा क्या ?

●

नीलकंठ

गीत हृदय से उठे, कंठ में आकर लेकिन गरल हो गये
ग्रो मेरे विश्वास! आज तुम शिव जैसे ही सरल हो गये

इसी तरह हर युग में मुझको
बार-बार ही छला गया है
प्यासे अधरों तक अमरित आ
वापस फिर से चला गया है
तृष्णाग्रों के पर्वत घुलकर आंसू जैसे तरल हो गये
गीत हृदय से उठे, कंठ में आकर लेकिन गरल हो गये
ग्रो मेरे विश्वास! आज तुम शिव जैसे ही सरल हो गये

पीड़ा की पालकी सजी है
मेरे मन के दरवाजे पर
असफलताएं बैठ गयी हैं
हर धड़कन पर धरना देकर
ऋतु वसंत की आयी लेकिन आम्र कुंज सब विरल हो गये
गीत हृदय से उठे, कंठ में आकर लेकिन गरल हो गये
ग्रो मेरे विश्वास! आज तुम शिव जैसे ही सरल हो गये

जिसमें प्यार अमर हो जाये
ऐसा अन्तःकरण कहां है
धूल बने चंदन माथे का
ऐसा पावन चरण कहां है

फूल खिले उसके पहले ही कितने रद्दो-वदल हो गये
गीत हृदय से उठें, कंठ में आकर लेकिन गरल हो गये
ओ मेरे विश्वास ! आज तुम फिर शिव जैसे सरल हो गये।



बंद रास्ते

जिधर भी बढ़ा
मिले रास्ते सब बंद

काँटे सब अड़े मिले
झुके मिले फूल
कहां–कहाँ हुई नहीं
है हमसे भूल

घुटी–घुटी साँसों के
टूट रहे छंद
जिधर भी बढ़ा
मिले रास्ते सब बंद :

ये काली छायाये
दिशा रही ढाँप
हर इच्छा के आगे
खड़े हुए साँप

फैले सन्नाटे में
उजड़ा आनंद
जिधर भी बढ़ा
मिले रास्ते सब बंद।

प्रश्नों के आगे हम
झुके रहे मौन

अपने ही अपने से
पूछ रहे कौन

पत्ते बदरंग हुए
कलियां निर्गन्ध
जिधर भी बढ़ा
मिले रास्ते सब बंद ।



असमर्थ

पीड़ा के विन्ध्याचल लांघे
आँसू के सागर पी डाले किन्तु अगस्त नहीं हो पाया

अपनी मुट्ठी में भर दिनकर
किरन लुटाता रहा सृष्टि भर
किन्तु रात का घना अंधेरा अब तक अस्त नहीं हो पाया

पीड़ा के विन्ध्याचल लाँघे
आँसू के सागर पी डाले किन्तु अगस्त नहीं हो पाया

बड़ी-बड़ी चट्टानें तोड़ी
नदियों की धारायें मोड़ी
पर बाबूल का वृक्ष फूल तक का अभ्यस्त नहीं हो पाया
पीड़ा के विन्ध्याचल लाँघे
आँसू के सागर पी डाले किन्तु अगस्त नही पाया

संज्ञाहीन विशेषण सारे
क्रियाहीन आचरन हमारे
अवसर चरणों पर बैठा पर मन विन्यस्त नहीं हो पाया
पीड़ा के विन्ध्याचल लाँघे
आँसू के सागर पी डाले किन्तु अगस्त नही हो पाया

●

सुबह की धूप

कन्या सी धूप
आज लगी सुबह-सुबह की

चिड़ियों सी चहकी
और फूलों सी महकी

मेंहदी की चर्चा से
ललियाया हुआ मुंह
मन की हर चाल
नशे में डूबी-बहकी

दिन को समर्पित
इन कन्या की रूप-राशि
सोने सी सुलगी
और ताम्बे सी दहकी

कन्या सी धूप
आज लगी सुबह-सुबह की
चिड़यों सी चहकी
और फूलों सी महकी

●

अनुपस्थित में

एक किरन है
जो अँधेरा दूरती है
कुंकुमी रेखा
मांग जैसे पूरती है

अँधेरे की पीठ पर
टिमटिमाती आँख
अकारण ही
मुझे घूरती है।

मैं
अनुपस्थित हूं
इस आलोक यात्रा में
बीती रात : टूटती देह
बसूरती है।

●

देह नदी

वह अँगड़ाई
जो पौ फटने सी लगती है
वह अरुनाई
जो आठो पहर सुलगती है

वह रूप
सँवारे बिना निखर जाता है जब
तब मुझको लगता है
मैं दर्पण क्यों न हुआ !

जो केश
गंध की तरह हवा में खुलते हैं
कंधों पर
संध्या के समान जो ढुलते हैं

वह देह
नदी की तरह लहर जाती है जब
तब मुझको लगता है
मैं सावन क्यों न हुआ !

आसमान
अंधियारे

किरनों की
सूरज के

जगह-जग
कलियों व

देह नदी

वह अँगड़ाई
जो पौ फटने सी लगती है
वह अरुनाई
जो आठो पहर सुलगती है

वह रूप
सँवारे बिना निखर जाता है जब
तब मुझको लगता है
मैं दर्पण क्यों न हुआ !

जो केश
गंध की तरह हवा में खुलते है
कंधों पर
संध्या के समान जो ढुलते हैं

वह देह
नदी की तरह लहर जाती है जब
तब मुझको लगता है
मैं सावन क्यों न हुआ !

●

फटती पौ

आसमान में बगरे चांवल बटोरती
अंधियारे सागर में गेरू रंग घोरती
फटती है पौ

किरनों की कंघी से केश–राशि कोरती
सूरज के हाथों का सेन्दुर अगोरती
फटती है पौ

जगह–जगह सन्नाटों की गांठें तोड़तीं
कलियों की गंध भरी अंगिया निचोड़ती
फटती है पौ



गहराती शाम

दिन भर की धूप, थकन ग्रौर उमस झारती
जगह-जगह पड़े धूप-खंड को बुहारती
गहराती शाम

घर लौटे पंछी को बैठी पुचकारती
मेंहदी ले हाथों से आरती उतारती
गहराती शाम

तुलसी के चौरे पर मंद दिया वारती
बच्चों की नींद भरी पलकों को प्यारती
गहराती शाम



अर्पण

मन को अर्पण कर दो
जीवन को आँसू से धो कर दर्पण कर दो।

साँसों की सीमा पर
विश्वासों की राहें
घुंगियाती हवा में
तैरती रहीं बाँहें
तृष्णा की हलचल से मन को निर्जन कर दो।

अपने ही पथ चल कर
पांवों को थकने दो
थकती है दुनिया तो
दुनिया को थकने दो
घृणा, द्वेष, लोभ, मोह, माया तर्पण कर दो।

दरवाजे पर लटका
अंधकार का ताला
इसीलिये दिखता है
सब कुछ काला-काला
मुसकुराती किरनों से उज्ज्वल आँगन कर दो।

